E-Newsletter

विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

वार्षिक शुल्क रु. ३०/-
आजीवन शुल्क रु. ५००/-

बुद्धवर्ष 2564, आश्विन पूर्णिमा (ऑनलाइन), 31 अक्टूबर, 2020, वर्ष 50, अंक 5

For online Patrika in various languages, visit: http://www.vridhamma.org/Newsletter_Home.aspx

धम्मवाणी

जिघच्छापरमा रोगा, सङ्खारपरमा दुखा।
एतं ञत्वा यथाभूतं, निब्बानं परमं सुखं॥

धम्मपदपाळि-203, सुखवग्गो

भूख (तृष्णा) सबसे बड़ा रोग है। भूख संस्कार सबसे बड़ा दु:ख। (तृष्णा और उससे बनते संस्कारों को अपने भीतर विपश्यना साधना द्वारा) यथाभूत जानकर जो निर्वाण (प्राप्त होता) है, वह सबसे बड़ा सुख है।

चूरू, दिल्ली, लखनऊ की ऐतिहासिक धर्मचारिका

(पूज्य गोयन्का जी के सभी पत्र अपने आप में अत्यंत प्रेरणादायक और लोक कल्याण की भावना से ओत-प्रोत होते थे। यह पत्र चूरू यात्रा के कुछ समय बाद लिखा गया परंतु अपने पूर्वजों की भूमि की उनकी यह यात्रा वहां के लोगों में धर्म के प्रति जिज्ञासा जागृत करने के उद्देश्य से दिल्ली शिविर के पूर्व की गयी। स्पष्ट है कि उनके मन में वहां के लोगों के प्रति अतीव करुणा एवं मैत्री की भावना थी कि कैसे वे अपने सगे-संबंधियों, हितैषी-मित्रगणों एवं चूरू के लोगों को इस मुक्तिदायिनी विद्या से जोड़ सकें? कैसे लोग मिथ्या मान्यताओं, कर्म-कांडों, पूजा-पाठ एवं व्रत-उपवासों के मकड़जाल से निकल कर धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझें? कैसे लोग ऊंच-नीच, जात-पांत, गरीबी-अमीरी की दकियानूसी विचारधाराओं से मुक्त होकर सही माने में अपना मंगल साधें? उनकी अठारह घंटे की इस संक्षिप्त चूरू-यात्रा का मुख्य उदेश्य यही था कि लोग आगामी शिविरों का लाभ उठा सकें। यही उद्देश्य था दिल्ली और लखनऊ यात्रा का भी। अपनी धर्म-चारिका में वे बर्मा से आये विस्थापितों के कल्याण के लिए भी निरंतर प्रयासरत रहे। इस प्रयास में **तत्कालीन सामाजिक ढांचे** *पर भी प्रकाश डाला। उनकी इस यात्रा ने अनेक लोगों के जीवन में शुद्ध धर्म की ज्योति जगायी।) (सं.)*

पड़ाव: ताड़ेपल्ली गुडम, दिनांक 29 अक्टूबर 1969

बाबू भैया, सादर वंदे!

"... दिल्ली से रेलगाड़ी पर सवार होकर जब रात के चौथे पहर चूरू पहुँचा तो स्टेशन पर कुछ लोग मुझे लेने आये हुए थे। मैं उनके साथ अपनी पुरानी हवेली पहुँचा। चूरू के स्टेशन का रंग-ढंग बिल्कुल बदला हुआ था। उसका परिदृश्य बड़े स्टेशनों जैसा था और स्टेशन से नगर तक रास्ते पर भी नए मॉडल के कई मकान आधुनिकता का परिचय दे रहे थे। परंतु अपनी हवेली तो वही थी। वही सँकरी-सी बल्ली-बांस की गली जिसमें गंदगी समाई हुई थी और आसपास की वे हवेलियां जिनकी जीर्णता मरम्मत की मांग कर रही थीं। मरम्मत कराने वाले परदेशों में बसे हुए थे। अपनी हवेली के पीछे का अहाता वही था, परंतु चारदीवारी के अंदर एक कोने में पहले से जरा सुधरे हुए दो शौचालय बना दिए गये थे और एक नहान घर भी। अब पानी का ट्यूब-बेल नहीं चल रहा था बल्कि नए बनाए गये नहान घर पर पानी की एक टंकी रखी हुई थी, जिसमें नगरपालिका के नल से सीधे पानी भर लिया जाता और दिन-रात काम आता था। अब पानी भरने वालों की आवश्यकता नहीं रह गई थी। बाकी हवेली ज्यों की त्यों थी। पिछले 40 वर्षों की जीर्णता ने उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया था।

इस हवेली के साथ मेरे जीवन की अनेक स्मृतियां जुड़ी हुई हैं, यद्यपि मैं यहां बहुत कम ही रह पाया हूं। मुझे स्मरण है जब इस हवेली की नींव पड़ रही थी और बड़े-बड़े पत्थरों से इसकी दीवारें चिनी जा रही थीं तब मैं लगभग 5 वर्ष का बालक इस भवन निर्माण की कला को बड़ी कौतूहलभरी दृष्टि से देखा करता था। टेढ़े-मेढ़े पत्थरों को कैसे कारीगर दीवाल पर चिनते थे और एक सीधी दीवार ऊंची उठती चली जाती थी। मजदूर पत्थर ढो-ढो कर राजगीरों के पास ला कर रखते थे। एक ओर आंख पर पट्टी बांधे हुए भैंसा गोल चक्कर में घूमती हुई चाक चला रहा था जिसमें गारा पिस कर तैयार होता और मजदूर स्त्रियां उस गारे को दीवार चिनने वाले कारीगर के पास पहुँचाती रहती थीं। कहीं दूर से कोई भिश्ती चमड़े की मशक में पानी भर-भर कर लाता और इस चाक के समीप एक हौज में भरते जाता था। यही पानी गारा बनाने के काम में लिया जाता था। इस हवेली के निर्माण के सारे दृश्य मेरे बाल मानस पर गहरे अंकित हो गये थे। आज लगभग दो पीढ़ियों के बाद भी इनकी स्मृतियां ताजी बनी हुई हैं।

और फिर 1942 में जब हम बर्मा से विपन्न विस्थापितों की तरह वन-वन भटकते हुए पहाड़ों पर्वतों में ठोकरें खाते हुए इस देश में शरण लेने आए थे तब इसी हवेली ने हमें अपनी शीतल गोद में शरण दी थी। उस समय इसका विशाल मातृत्व बड़ा ही सुखकर प्रतीत हुआ था और फिर यहां रहते हुए उन दिनों के खट्टे मीठे अनुभव भुलाए नहीं भूलते। यहीं मैंने अपने दांपत्य-जीवन का आरंभ किया था। यहीं मुझे गृहस्थ की कटु कठोर जिम्मेदारियों ने पहले-पहल चिंतित किया था। यहीं मुझे व्यापारिक अनुभव की पैनी ठोकरें लगी थीं। इसी हवेली में केवल चंद महीनों के आवास ने मुझे जीवन की बड़ी गहन शिक्षाएं दी थीं और यहीं आर्थिक क्षेत्र में अपने पांव पर स्वयं खड़े होने का दृढ़ निश्चय किया था। इस हवेली में पांव रखते ही वर्षों पुरानी वे सारी स्मृतियां जीवंत हो उठीं।

स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर मैं नगर की ओर निकला। एक बार तो जी चाहा कि अब अपनी इस बरमी वेशभूषा को त्याग कर कोट-

रजि. नं. 19156/71. Postal Regi. No. NSK/RNP-235/2018-2020

पतलून पहन लूं। लेकिन तुरंत मन में आया कि यह स्वाभाविकता के विरुद्ध दिखावा मात्र होगा। मेरी जन्मभूमि की जिस प्रिय वेशभूषा को मैंने सहज भाव से अपना रखा है उसका परित्याग करना और वह भी केवल मात्र कुछ एक लोगों की अभिरुचि के कारण, मुझे बड़ा नागवार लगा। अतः मैं अपनी दैनिक वेशभूषा में ही नगर-भ्रमण के लिए निकला। भले ही यह लोगों के लिए कौतूहल का कारण बना।

बाजार में लगभग सभी पुराने मित्र और संबंधी मिले। बहुत पुराना मित्र लक्ष्मीचंद भी मिला, जिसकी सहृदयता देखने योग्य थी। उस छोटे से बाजार में से होता हुआ मैं भाई सुबोध अग्रवाल के साथ "नगर श्री" के कार्यालय में गया। यह वही स्थान है जहां कभी साहित्य गोष्ठी की बैठकें हुआ करती थीं और जहां मुझे बंदिशें जोड़ने और साहित्य रचने की प्रेरणा प्राप्त हुई थी। आज वहां सुबोध के अनुज गोविंद ने एक चित्र प्रदर्शनी खोल रखी है जिसमें चूरू के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पुरातन और नूतन नगर वासियों के चित्र सँजोए हुए हैं। इन चित्रों में मैंने अपना भी एक चित्र देखा जो कि बर्मा के भूतपूर्व प्रधानमंत्री ऊ नू (U Nu) के साथ रंगून के 'अष्टग्रह कोप निवारण यज्ञ' के समय लिया गया था। इस संग्रहालय में चूरू के आसपास प्राप्त हुए कुछ एक पुरातत्त्व संबंधी सामग्रियां भी संगृहीत हैं, जिसमें तमिल लिपि में लिखा ताड़पत्रों का एक ग्रंथ भी है, जिसे किसी जैन धर्म ग्रंथ का अनुवाद बताया गया है।

दक्षिण भारत बौद्धों की तरह कभी जैनियों का भी महत्त्वपूर्ण केंद्र रहा है और राजस्थान तो आज तक भी जैनियों का प्रभाव क्षेत्र है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि किसी समय इन दूर देशों का पारस्परिक धार्मिक संबंध रहा हो और इसी कारण यह तमिल भाषा का जैन ग्रंथ यहां आ पहुँचा हो।

मैंने देखा कि भाई गोविंद चूरू के इतिहास पर एक गवेषणापूर्ण शोध ग्रंथ लिख रहे हैं, जिसकी पांडुलिपि लगभग तैयार हो चुकी है और प्रकाशन के लिए आर्थिक सहारे की खोज में हैं। मैं इस पांडुलिपि को सरसरी निगाह से देख गया। मैंने देखा कि सारे इतिहास वर्णन में जैसा कि सामान्यतः होता है, केवल राजपुरुषों और धनवानों का ही उल्लेख है। साधारण जनता का मानो इतिहास से कोई संबंध ही न हो। मैंने भाई गोविंद का ध्यान इस ओर आकर्षित किया तो उसने मुझे बड़े उत्साह के साथ यह सूचना दी कि वह इस पुस्तक के लिए अभी एक अध्याय और लिख रहा है जो चूरू के प्राचीन और अर्वाचीन लोक जीवन से संबंधित होगा। उसने मुझे कुछ पुराने चित्र भी दिखाए जिसमें लोक जीवन की झांकियां प्रस्तुत की गई हैं। मैंने उसके इस कार्य का अभिनंदन किया और पुरानी साहित्य गोष्ठी तथा विद्यापीठ के दिनों की मधुरिम स्मृतियों को जागृत करते हुए देर तक बीते दिनों की चर्चा करते रहे। चित्र प्रदर्शनी में एक तरफ पूज्य गुरु राम नारायण जी जोशी का एक बड़ा-सा चित्र लगा था जो कि उनकी पुण्य स्मृति को ताजा कर रहा था। उनके सरल स्वभाव, सादे जीवन और गहन पांडित्य पर हम सबका मन बार-बार श्रद्धा से झुकता जा रहा था। किस प्रकार जीवन के मध्याह्न में उस त्यागी महापुरुष ने एक बिलखती हुई मां के बच्चे को धधकती आग में से निकाल लाने के लिए अपने जीवन की आहुति दे दी। उनका यह बलिदान किसी अपरिचित को भी श्रद्धा विभोर कर देने के लिए पर्याप्त था। हमने तो उनके चरणों में बैठकर बहुत कुछ सीखा था। उनका बच्चों का-सा निष्कपट स्वभाव मुझे कभी भुलाए नहीं भूलता। उनकी यह निःशुल्क पाठशाला थी। वहां पढ़ते हुए दीपावली के अवसर पर मेरे मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि हमारे ये त्यागमूर्ति गुरुदेव शिक्षा-शुल्क के नाम पर तो कुछ लेंगे नहीं, क्यों न इन्हें दीवाली-प्रणाम के लिए कुछ दक्षिणा दे दें। घरवालों ने मुझे ₹5 दिए। उस समय मुझे लगा कि ₹5 की दक्षिणा तो बहुत कम है। मैं अपनी विशारद की परीक्षा के लिए उसी समय ऋषिकुल के एक अध्यापक के पास एक महीने तक अंग्रेजी पढ़ने गया था और उसके लिए उन्हें ₹25 या ₹30 दिए गये थे। और ये मुझे अपने विद्यापीठ में चार-पांच महीने से निःशुल्क पढ़ा रहे थे। इन्हें केवल ₹5 दिया जाना मुझे बहुत अखरा, परंतु लाचारी थी। घर से ₹5 ही लेकर मैं अपने गुरु को दीवाली का प्रणाम करने गया था। मुझे भय था कि मेरी इस क्षुद्र-सी भेंट से उनके मन को क्षोभ होगा। परंतु इसके विपरीत हुआ यह कि कई दिनों तक उनके लिए यह एक बड़ी प्रसन्न-चर्चा का विषय रहा। जो मिले उसी से कहें कि दीवाली पर मेरे इस बर्मा के शिष्य ने मुझे 5 चांदी के रुपए दिए। इस त्योहार पर चांदी के रुपयों का कितना महत्त्व है। मेरा ऐसा सम्मान और किसी ने नहीं किया आदि आदि। उनकी यह बच्चों की-सी सरलता मुझे कालांतर में गुरुदेव ऊ बा खिन में ही देखने को मिली। ऐसे संत पुरुष से हिंदी साहित्य की शिक्षा प्राप्त करने का मेरा सौभाग्य सचमुच अनूठा ही रहा। अपने सहपाठियों के साथ उनके सरल वात्सल्य की चर्चा करते हुए जी नहीं अघाता था।

"नगर श्री" के कार्यालय में किसी कैमरामैन को बुलाकर सुबोध ने हमारी कुछ फोटो भी खिंचवाई। वहां का कुछ प्रकाशित साहित्य भी मैंने खरीदा परंतु मुझे उसकी आंखों की भाषा पढ़ने से ऐसा लगा जैसे कि वह मुझ पर कोई बड़ी आस लगाए बैठा है। पर ब्राह्मणी वृत्ति का अभ्यास न होने के कारण मुँह खोलते हुए सकुचा रहा है। मैं इस भाषा को खूब समझ सकता हूं। सार्वजनिक जीवन में मनोविज्ञान के अध्ययन का तो अच्छा अवसर मिला ही है, परंतु मुझे असमर्थता सता रही थी। एक बार जी में आया कि ₹20–₹30 का मोल चुकाने के लिए मैंने उन्हें जो ₹100 का नोट दिया है उसका शेषांश वापस न लेकर संस्था को ही दान कर दूं। परंतु किसी ने भीतर से रोक दिया और यह रोकना थोड़ी देर के लिए फिर पीड़ाजनक प्रतीत हुआ। मनुष्य को अपना स्वभाव बदलने में समय भी लगता है और कठिनाई भी होती है। पिछले 20 वर्षों से तुमने मुझे कुछ ऐसा मुक्तहस्त बना दिया कि किसी भी मांगनेवाले को 'न' कहना सीखा ही नहीं। कमोवेश देकर ही मन संतुष्ट हुआ, मना करके नहीं। और जब परिस्थिति ने ऐसी करवट ली है कि देना भार लगने लगा है और मना करने का अभ्यास करना पड़ रहा है। मना करने से ज्यादा कठिनाई मना करने के लिए जो झूठे बहाने बनाने पड़ते हैं वे हृदय को बहुत सालते हैं। और अपने मन की सच बात किसी से कैसे कह दूं? मेरी प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं, किसी और की प्रतिष्ठा का गहरा प्रश्न है। अजीब मानसिक कशमकश है। इस स्थिति का सामना चूरू में रहते हुए अनेक लोगों के सम्मुख हुआ। कुछ लोग जो ₹2, ₹4, ₹5 तक के ग्राहक थे उनको तो न नहीं किया, परंतु इससे अधिक वालों के लिए ऐसे बहानों का सहारा लेना पड़ा है जो कि मुझे हमेशा बहुत बुरे लगे हैं। जी चाहता था कि एक-एक व्यक्ति से कह दूं कि तुम्हारी मांग पूरी नहीं की जा सकती। परंतु न जाने क्यों ऐसा नहीं कहा गया। कहने पर कोई मानता भी तो नहीं। इसका अनुभव मुझे एक व्यक्ति से हो चुका है।

यह है अपना मित्र व्यास। मैंने इसे एक से अधिक बार बहुत खुले शब्दों में लिख दिया कि अब वह धनपति गोयन्का की स्मृति को भुला दे। साहित्य सेवी या चाहे तो धर्म सेवी गोयन्का से भले संबंध रखे। परंतु फिर भी वह एक अजीब व्यक्ति है। बार-बार इस बात को

समझाता हूं फिर भी किसी न किसी पत्र में अर्थ की मांग कर ही देता है। मैं बार-बार उसे अपनी बात दोहराता हूं और वह एक लंबा ग्लानिभरा पत्र भी लिख देता है, परंतु महीना भर नहीं बीतने पाता कि फिर कोई ऐसी ही मांग रख देता है। पिछले दिनों उसने सुबोध की आंखों की भाषा अपने पत्र में व्यक्त की और लिखा कि उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया है। वह तो यह उम्मीद कर रहा था कि मेरे 'नगर श्री' आगमन से पूज्य पितामह की स्मृति में वहां एक बड़ा-सा हाल बनवा दिया जायेगा। मैंने उस व्यक्ति को फिर अपनी स्थिति समझाई और इस बार कुछ अधिक स्पष्ट शब्दों में समझाई तो फिर उसका लंबा ग्लानिभरा पत्र आया, परंतु पता नहीं ऐसी ही कोई मांग लिए हुए फिर कोई पत्र कब आ जाय? मांगने वाले अपना स्वभाव नहीं बदल सकते। परंतु देनेवाले को परिस्थितियां मजबूर कर रही हैं कि वह अपना स्वभाव बदल दे। यद्यपि वह जानता है कि "जिन मुख निकसत नाहिं" की कितनी मरणासन्न अवस्था होती है।

हवेली की बैठक में चार घंटे की धर्मचर्चा में सभी बहनें मेरे साथ बैठी रहीं। उनके लिए भी धर्म की ऐसी बातें बड़ी नई थीं। मुझे डर था कि कहीं उनके मन में भगवान बुद्ध की इस साधना के प्रति उदासीनता न आ जाय। परंतु फिर भी ठकुरसुहाती (खुशामदी शब्द) कहने का स्वभाव छूटते चले जाने के कारण जो बात मुझे जैसी लगी वैसी ही कह दी। लेकिन धर्म का अपना स्वभाव होता है। कटु सत्य से एक बार आदमी चिढ़ता अवश्य है पर सत्य की यह कड़वी दवा उसे सोचने के लिए मजबूर करती है और वह शीघ्र ही धर्म के प्रति आकर्षित हो जाता है। मेरे मुँह से ईश्वर नाम का विरोध, मंत्रों का विरोध, भक्ति का विरोध, भजन-कीर्तन का विरोध, पूजा-पाठ का विरोध, कथा-वार्ता का विरोध, अवतारों का विरोध, इतने सारे कड़वे विरोध सुनकर भी उनके मन में धर्म जागा और सभी बहनों ने एक स्वर से आग्रह किया कि मैं चूरू में 10 दिन का एक साधना शिविर अवश्य लगाऊं। मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि यद्यपि चूरू में शिविर लगाया जाना असंभव है परंतु यदि दिल्ली के कुछ लोग इसके लिए तैयार हुए तो नालंदा का शिविर कैंसिल करके दिल्ली में शिविर अवश्य लगाऊंगा, जिसमें वे सब सरलता से सम्मिलित हो सकेंगी। अंततः जब दिल्ली में शिविर लगा तो बाई गिन्नी और सावित्री तो आ सकीं परंतु जयदेवी को अपना घर सूना छोड़ कर आना भारी हो गया। और बाई रावती की पुत्रवधू आसन्नप्रसवा होने के कारण वह भी न आ सकी। हां एक पत्र लिखते ही सादुलपुर से बाई इलायची अवश्य आने को तैयार हो गई और आई भी।

मैं शाम को कुछ एक मित्रों के साथ स्टेशन की ओर घूमने निकला। रास्ते में पूज्य पिताजी द्वारा खरीदी हुई वह जमीन भी देखी जिसके समीप ही एक आधुनिक ढंग का वातानुकूलित सिनेमा घर बन रहा है। उस रास्ते पर कुछ एक नई कोठियां बन गयी हैं। पुरानी कोठियां और पुराना बगीचा पहले जैसा ही है। किसी में कोई सुधार नहीं हुआ, बल्कि वह इंद्रमणि पार्क तो बिल्कुल उजाड़ हो गया है। वहां की सारी रौनक और हरियाली समाप्त हो गई है। रेलवे लाइन के किनारे-किनारे एक नई आबादी अवश्य बस गई है। नए ढंग की कोठियां बनी हैं और उसी ओर सरकार का एक ऊंचा कारखाना है जो सरकार का होने के कारण चलने के बजाय बंद रहने में ही अपनी सार्थकता समझता है।

चूरू में मेरे पुराने मित्र पंडित मुरलीधर शर्मा मिले जो कि रात को 11:00 बजे स्टेशन तक मेरे साथ रहे। पंडित द्वारका प्रसाद मिश्र और मोहनलाल मिश्र से भी मिला। पंडित रामलाल वैद्य कहीं बाहर गये हुए थे, लौटकर 9:00 बजे घर आये तो द्वारका प्रसाद मिश्र से उनकी भेंट हो गई और उनको साथ लिए हुए वे भी स्टेशन तक मुझे मिलने आये। इन लोगों से काफी देर तक धर्म संबंधी चर्चा हुई। वे अपनी अब तक की मान्यताओं के विरुद्ध ईश्वरवादी भक्ति मार्ग के विपरीत इतनी बातें सुनकर दंग रह गये। यह क्रांतिकारी विचारधारा उनके लिए बड़ी कड़वी घूंट साबित हुई। परंतु काफी देर तक की वार्ता के बाद विशेषकर पंडित मुरलीधर ने इस बात को स्वीकार किया कि मेरे तर्कों में बहुत भारी वजन है और ईश्वर के स्थान पर मैं जिस प्रकार 'धर्म' को बल देता हूं वह उनके लिए जरा भी हानिप्रद नहीं, बल्कि कल्याणकारी ही है। ऐसी विचारधारा को नास्तिकवादी विचारधारा नहीं कहा जा सकता। पंडित मुरलीधर ने इस बात पर जोर दिया कि यदि मैं एक दिन अधिक रुक जाऊं और वहां के शिक्षित समाज में मेरे प्रवचन और धर्मचर्चा का एक कार्यक्रम रखा जाय तो निश्चित रूप से इस कल्याणकारी साधना के शिविर में सम्मिलित होने के लिए 20-25 पढ़े-लिखे लोग हो ही जायेंगे। परंतु मेरे पास समय नहीं था। मुझे समय पर दिल्ली लौटना आवश्यक था और साथ ही मैं 10 दिनों के शिविर का कोई कार्यक्रम समयाभाव के कारण चूरू में रख भी नहीं सकता था।

इस प्रकार लगभग 18 घंटे अपने पुरखों की इस धरती पर रहकर मैं रात की गाड़ी से दिल्ली के लिए चल पड़ा। दिल्ली पहुँचने के बाद बहुत व्यस्त हो गया। भिन्न-भिन्न सरकारी अधिकारियों, राजनेताओं और मंत्रियों से मिलने में ही बहुत-सा समय निकल गया।

दिल्ली पहुँचने पर दूसरे दिन "बर्मा भारतीय युवक मैत्री संघ" एवं "हिंदी परिषद" ने मेरे सम्मान में एक संयुक्त गोष्ठी का आयोजन किया। श्री दिनकर जी ने इस गोष्ठी की अध्यक्षता की। गोष्ठी शाम को 5:00 से 7:00 बजे तक चली। दिल्ली में एक अजीब नियम है। जहां किसी व्यक्ति का कोई सम्मान किया जाता है वहां अनेक संस्थाओं के प्रतिनिधि अपनी ओर से पुष्पमाला पहनाते हैं। मुझे भी वहां लगभग 15-20 संस्थाओं की ओर से पुष्पहार पहनाये गये और फिर एक अभिनंदन पत्र भेंट किया गया। मेरे अनेक परिचित मित्रों ने इस अवसर पर मेरे बारे में प्यारभरे शब्द कहे। परंतु कभी मुझे भी यह बोझ उठाना पड़ेगा, ऐसी कल्पना नहीं की थी। सचमुच बोझ ही लगा। क्योंकि इस सारे आयोजन में बहुत-सी बातें ऐसी कही गईं जिनमें अतिरंजना थी और जहां मेरे गुणों का इतना बड़ा प्रकाशन किया गया वहां मेरे दोषों को कोई प्रकट ही नहीं कर रहा था। जबकि कल्याण तो इस बात में होता है कि कोई हमारा दोष भी प्रकट करता रहे, जिससे कि हम भटक न पाएं। मुझे इस समय रह-रह कर अपने दोष भी याद आ रहे थे और साथ ही साथ मन को इस बात के लिए सावधान भी करते जा रहा था कि कहीं इन प्रशंसा के शब्दों को सुनकर वह फूल न उठे। मुझे एक प्राचीन बौद्ध कवि के ये उद्गार याद आ रहे थे कि "जब कोई मेरा सम्मान करता है तो मुझे इस बात का स्मरण रहता है कि दुनिया में मेरी निंदा करने वाले भी हैं, क्योंकि मुझमें अभी दोष भी हैं। और जब कोई मेरी निंदा करता है तो मुझे यह स्मरण हो जाता है कि दुनिया में मेरी प्रशस्ति गाने वाले भी हैं, क्योंकि मुझमें कुछ गुण भी हैं।" इस प्रकार निंदा और प्रशंसा दोनों ही अवस्थाओं में मैं अपने मन को संतुलित रखने का अभ्यास करता हूं। मैं भी इन प्राचीन विद्वानों के सुंदर विचारों को याद करते हुए इस समारोह में भाग लेता रहा। लोगों के प्रशस्ति

वचनों के बाद मुझे अपनी बात कहनी थी। मैंने अपने वक्तव्य में नैतिक दृष्टि से पतन की पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए अर्वाचीन भारत की दीनदशा पर आंतरिक पीड़ा व्यक्त की। श्री दिनकर जी अध्यक्ष पद से मेरी बातों का समर्थन करते हुए कुछ देर बोले। उनके वक्तव्य में भी गहरी मनोव्यथा उभर आई थी। मैंने अपने भाषण के दौरान थोड़ा-सा जिक्र बर्मा में हम प्रवासियों की स्थिति के बारे में भी किया। बर्मा की वर्तमान स्थिति के लिए हमारी अपनी जिम्मेदारी पर भी प्रकाश डाला। और साथ ही साथ बर्मा के विस्थापितों को वर्तमान बर्मी सरकार के प्रति मन में किसी प्रकार की दुर्भावना न रखने का भी सुझाव दिया। धर्म-दर्शन और अपनी बुद्धिवादी विचारधारा की थोड़ी बहुत अभिव्यंजना भी मेरे वक्तव्य में होनी स्वाभाविक थी। परंतु ऐसे लगा कि वह कड़वी घूंट भी लोग प्यार से पी गये और किसी ओर से कोई प्रतिकूल प्रतिक्रिया नहीं हुई। बल्कि लोगों ने कुछ दिनों बाद तक भी उस भाषण की प्रशस्ति ही की, निंदा नहीं।

बर्मा के विस्थापितों का अपने एक पुराने मित्र के प्रति जो प्यार उमड़ा था उस पर बांध लगाना भी बड़ा कठिन था। उनके मन में इस बात का मलाल बना रहा कि यह सभा तो स्थानीय हिंदी वालों के साथ मिल जुलकर मनाई गई, इसलिए बर्मा की समस्याओं पर पूरी बातचीत यहां न हो सकी। अतः उनके लिए एक अलग आयोजन होना ही चाहिए। मैंने उनकी यह मांग इस शर्त पर स्वीकार की कि उसमें जलपान इत्यादि पर एक पैसा भी खर्च न किया जाय और मात्र मौजूदा समस्याओं के समाधान पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से विचार-विमर्श ही हो, और यही हुआ। दो दिन बाद एक अलग गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें मैं दिल्लीवासी बर्मा विस्थापितों से डेढ़-दो घंटे हिलमिल कर बातचीत कर सका। उनकी समस्याओं को समझ सका और भारत सरकार के जिन अधिकारियों से मैं मिल रहा था उनके सामने प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त कर सका। इस गोष्ठी में बर्मा के विस्थापितों की दीन दशा देखकर मन बड़ा द्रवित हुआ। कभी ये सब के सब उस उदार देश में किस प्रकार सुख-संतोष का जीवन बिताते थे और अब कैसी दीन-हीन अवस्था को प्राप्त हो गये हैं। हर बदलती हुई स्थिति हमारे अपने कर्मों के फल स्वरूप ही है। यह बात समझ में आ जाय तो दुःख हल्का हो जाय। किसी अन्य के प्रति मन में दौर्मनस्य के भाव न उठें। सारा भविष्य हमारे वर्तमान कर्मों से प्रभावित होगा। हम चाहे जिस ओर अपने भविष्य को मोड़ सकते हैं, यह विश्वास हो जाय तो मनुष्य के मन में एक नई स्फूर्ति, नई आशा और नई आस्था का दृढ़ संचार होगा। इन विस्थापितों को इस प्रकार आश्वासनभरे शब्द कह कर मैंने उन सब से विदाई ली।

केंद्रीय सरकार के वित्त मंत्री श्री जगन्नाथ जी से उनके घर पर मैं लगभग 3 घंटे तक बातचीत करता रहा। बर्मा विस्थापितों की समस्याओं पर उन्होंने आंतरिक सहानुभूति प्रकट की और विश्वास दिलाया कि उनके विभाग से जो भी हो सकेगा वे अवश्य करेंगे। 2-3 समस्याएं जो प्रत्यक्ष रूप से इन्हीं के विभाग से संबंधित थीं, इन्होंने तुरंत स्वीकार कर ली और शीघ्र आवेदन पत्र देने के लिए कहा ताकि वे आवश्यक निर्देश घोषित करा दें। परंतु इन विस्थापितों की संस्था के अधिकारियों को शीघ्र आवेदन पत्र देने की सलाह देकर आने के बावजूद एक महीने पश्चात सारनाथ और दिल्ली के शिविर समापन के बाद जब उनसे मिला तो पता चला कि उन्होंने आवेदन पत्र दिया ही नहीं। सभी अपनी-अपनी व्यक्तिगत समस्याओं में व्यस्त रहे और अब तो समाचार पत्रों से यह विदित हुआ है कि कांग्रेस की वर्तमान फूट के कारण यह उप वित्तमंत्री अपनी गद्दी खो चुका है। पता नहीं इनके रहते-रहते इन लोगों ने आवेदन किया या नहीं। शायद ही किया हो।

इन्होंने मुझे यह भी आश्वासन दिया था कि इस समय रंगून की रामकृष्ण मिशन सोसाइटी को जो वार्षिक अनुदान दिया जाता है उसे वे दुगुना करवा देंगे, बशर्ते कि स्थानीय भारतीय दूतावास से कोई सिफारिश आ जाये। यह सिफारिश भी नए राजदूत द्वारा ही संभव थी, इसलिए उस ओर कोई काम करने का सुझाव भी मैंने रंगून वालों को नहीं दिया था। परंतु अब तो नए राजदूत के पद भार संभालने के पूर्व बेचारा उपमंत्री ही पद मुक्त हो गया।

ये मंत्रीजी राजस्थान के हरिजनों के प्रतिनिधि थे परंतु अंत्यज होने की हीन भावना इनके मन में भी गहरी समाई हुई थी। सचमुच हम सवर्ण हिंदुओं ने निम्न वर्ग के साथ सदियों से जो अत्याचार किए हैं उसकी विषैली प्रतिक्रियाएं इस जाति के पढ़े लिखे लोगों में गहरा विष लिए हुए होती हैं। इसका एकमात्र उपाय जातिप्रथा का सर्वथा उन्मूलन है। परंतु यह वर्तमान हिंदू समाज के शरीर पर से चमड़ी अलग कर देने के समान ही दुःसाध्य और असंभव प्रतीत होता है। जात-पांत का भेदभाव हमारे सामाजिक जीवन में इतना गहरा समा गया है कि इसकी वजह से इस देश के सामाजिक ही नहीं बल्कि राजनैतिक जीवन में भी जो कोढ़ व्याप्त हो गया है, उससे छुटकारा प्राप्त करना बड़ा कठिन प्रतीत होता है। कैंसर की तरह इस रोग की जड़ें समाज के अंग-अंग में समा गई हैं। सभी पीड़ित हैं परंतु फिर भी जानबूझ कर इसे गले लगाए हुए हैं। सदियों की रूढ़ियां इस प्रकार अंतर्मन में घर कर गई हैं कि एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी इसके बाहर नहीं निकल पाता। भले ही अब वह डॉक्टर है या वकील है या इंजीनियर है, पर मन में वह अपने आप को हरिजन ही समझे जा रहा है। हिटलर के प्रचारमंत्री गोयेबल्स ने कहा था कि "एक झूठ को यदि हम हजार बार कहें तो वह झूठ भी सच प्रतीत होने लगता है।" ऐसा ही प्रभाव है इस झूठ के बार-बार किए गये उच्चारण का, और हमारे यहां तो जन्म से ही इस झूठ का उच्चारण किया जाता है – जिसको कहते-सुनते एक ऐसा गहरा असर पड़ जाता है कि हम उसे सत्य मानने लगते हैं और दुर्भाग्य से वह झूठ सचमुच हमारे लिए सच हो जाता है।

एक निम्न जाति वर्ग वाला जनमते ही इस बात को सुनने लगता है कि वह निम्न जाति वर्ग का है। कोई उसे यह नहीं कहता कि वह 'मनुष्य जाति' का है, कोई अन्य जाति नहीं है उसकी। इसलिए वह मनुष्य जाति को भूलकर अपनी निम्न जातीयता को ही याद रखता है और यही उसके लिए जीवन भर कठोर सत्य बना रहता है। इसी प्रकार उच्च जाति वर्ग का कहलाए जाने वाले किसी परिवार में जन्म लेने वाला बालक जन्मते ही यह झूठ सुनने लगता है कि वह उच्च जाति का है। अब यह सफेद झूठ उसके मन में ऐसी समा जाती है कि इसकी सत्यता पर उसे दृढ़ विश्वास हो जाता है कि वह उच्च जाति कुल का है। बार-बार दोहराई गई एक झूठ का कितना गहरा प्रभाव पड़ता है कि समाज का कोई भी व्यक्ति क्षण भर के लिए सोचना नहीं चाहता कि भोजन बनाने वाला बावर्ची है, दूध बेचने वाला ग्वाला है, पान बेचने वाला पनवाड़ी है, यह उच्च जाति का कैसे है? कोई इस बात की चिंता नहीं करता कि जिस व्यक्ति ने कभी चार वेदों के नाम भी नहीं सुने, वह चतुर्वेदी कैसे हैं? चौबे कैसे है? अजीब करिश्मा है यह झूठ दोहराने का, जिसने हमारे देश में इस जातिवाद की जड़ें इतनी गहरी जमा दी हैं। अनुसूचित जाति के मंत्रीजी से बातचीत करते हुए यह समस्या उभर कर सामने आई ही।

बौद्ध हो जाने के बावजूद एक सवर्ण हिंदू तो उसे निम्न मानता ही है, परंतु दुर्भाग्य यह है कि वह अनुसूचित जाति वाला ही अपने आप को नीची जाति का माने चलता है। उसके मन में सदियों से घर कर गई हीन भावना निकल नहीं पाती। यदि ये बौद्ध अपने आप को अछूत मानना बंद कर दें और शील समाधि प्रज्ञा द्वारा अपने जीवन में एक नया परिवर्तन ले आएं और दूसरी ओर सवर्ण हिंदू भी इस असंख्य बार दोहराई गई झूठ से पिंड छुड़ा कर अपने आप को मनुष्य मानने लगें, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मानना छोड़ दें तभी इस समस्या का समाधान हो सकता है। परंतु ऐसा कब हो पायेगा? कैसे हो पायेगा? यह अपने आप में एक बड़ी समस्या है।

राजस्थान के एक अन्य राजनेता श्री रामनिवास मिर्धा से भी उनके घर पर बहुत देर तक बातचीत हुई। ये एक सुलझे हुए विचारों के व्यक्ति लगे। इनमें व्यावहारिकता के साथ-साथ मानवीय सहृदयता और सहानुभूति के भाव भी पर्याप्त मात्रा में मिले। दिल्ली रहते हुए मैंने भारत सरकार से बर्मा के लिए हिंदी पाठ्य पुस्तकें निःशुल्क प्राप्त करने में अपना बहुत-सा समय लगाया। छोटे बड़े अनेक लोगों से मिला। अधिकारियों और मंत्रियों के मनोविज्ञान का भी अध्ययन करने का अच्छा अवसर मिला। एक ओर इस तरह के मंत्री और अधिकारी भी मिले जो सामने आने वाली हर समस्या को किसी प्रकार टालने में ही अपनी विजय समझते हैं और कुछ ऐसे लोग भी मिले जो समस्या का हल निकालने में अपना गौरव समझते हैं। यद्यपि इस दूसरे तबके के लोग बहुत कम ही थे। फिर भी मेरा सौभाग्य था कि कुछ तो ऐसे लोग मिले ही जैसे राष्ट्र मंत्रालय के हिंदी विभाग के अधिकारी श्री बच्चू प्रसाद सिंह, स्वयं परराष्ट्र मंत्री श्री दिनेश सिंह और उनका व्यक्तिगत सचिव श्री पुरुषोत्तम, जो कि बर्मा के लिए नियुक्त हुए नए भारतीय राजदूत श्री बालेश्वर प्रसाद के सगे भतीजे हैं। इनके अतिरिक्त "दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा" की दिल्ली शाखा के सचिव श्री अंजनी शर्मा बड़े जिंदादिल आदमी लगे। इन्होंने इस दिशा में हर प्रकार की सहायता देने के लिए बहुत ही उत्साह दिखाया।

भारत के परराष्ट्र मंत्रालय में सौभाग्य से मुझे अपने बहुत से पुराने परिचित मित्र मिले, जिनका व्यवहार बड़ा ही सौजन्यपूर्ण रहा।

जिस दिन 'हिंदी परिषद' में मेरे अभिनंदन का आयोजन था उसी रात प्रसिद्ध लेखक भाई श्री यशपाल जैन की वर्षगांठ के लिए दिल्ली के चुने हुए साहित्यसेवी और समाजसेवी एकत्र हुए थे। इस अवसर पर औरों के साथ मैंने भी अपने इस मित्र के प्रति मंगल कामना प्रकट की। इस अवसर पर अनेक नए पुराने साहित्यकार मित्रों से भेंट हुई। श्री काका कालेलकर जी, श्री जैनेंद्र जी जैसे कई जाने माने साहित्यकारों से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

एक दिन प्रसिद्ध लेखक श्री विष्णु प्रभाकर के यहां दिवा भोज के लिए एकत्र हुए तो वहां श्री ब्रह्मानंद जी से देर तक बातचीत हुई। 2-1 बार श्री यशपाल जी के घर भी जलपान के लिए गया और वहां के सहृदय साहित्यिक वातावरण का लाभ उठाया।

भारत से "बर्मा हिंदी साहित्य सम्मेलन", रंगून को आवश्यक पाठ्य पुस्तकें भेजते रहने के लिए तथा इसी प्रकार के अन्य साहित्यिक सहयोग के लिए एक "बर्मा भारत साहित्य समिति" का गठन किया गया। इसके अध्यक्ष श्री यशपालजी नियुक्त हुए तथा मंत्री और कोषाध्यक्ष हमारे पुराने मित्र श्री राधे श्याम ल्हिला एवं श्री धर्मवीरजी चुने गये। इस **संस्था** के जिम्मे यह काम लगाया गया कि यह भारत सरकार से तथा अन्य सार्वजनिक संस्थानों एवं दानी व्यक्तियों से हिंदी की पाठ्य-पुस्तकें प्राप्त करके बर्मा भिजवाती रहे।

कुछ दिन दिल्ली में बिताकर मैं 5 सितंबर की रात को लखनऊ के लिए रवाना होकर 6 को प्रातः वहां थोड़ा देर से पहुँचा, जबकि 8:00 बजे लखनऊ के राजभवन से निकल जाने का कार्यक्रम था। इसलिए आधे घंटे में मुझे नहा धोकर तैयार हो जाना पड़ा। फिर वहां राजभवन में पहले से ही ठहरे किसी पड़ोसी राष्ट्र के राजदूत महोदय के साथ उनकी वातानुकूलित कार में सौ-डेढ़-सौ मील दूर 'नैमिषारण्य' नामक स्थान पर जाना था। बहुत प्रयत्न करने पर भी हम 8:00 बजे की जगह 8:30 बजे ही यात्रा के लिए रवाना हो सके। रास्ते भर उन राजदूत महोदय से उनके देश के बारे में बहुत ही दिलचस्प बातें होती रहीं। राजदूत महोदय स्वयं एक अच्छे विद्वान, कवि और साहित्यकार थे अतः हम दोनों की अभिरुचियों में खूब तालमेल बैठ गया और 2:30-3:00 घंटे की यह यात्रा भार स्वरूप नहीं लगी। वैसे गाड़ी भी खूब आरामदेह थी और सड़कें भी। ऋतु भी सुहावनी थी और समय भी। सड़क के दोनों ओर के खेत बड़े मनमोहक थे।

नैमिषारण्य में हमारे पहुँचने की पूर्व-सूचना दी गई थी और वहां लोग हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। वहां पहुँचते ही मुझे एक आश्रम में ले जाया गया। मैंने देखा कि वहां एक ऊंचे आसन पर एक लंबी चितकबरी दाढ़ी और जटा वाले संन्यासी बैठे हैं और उनके सामने दाहिनी ओर 100-200 संन्यासियों का समुदाय है, और बाईं ओर 200-300 गृहस्थ नर नारियों का समुदाय है। संन्यासी कषाय वस्त्र धारी थे। सब के माथे पर अपने गुरु की तरह ही लंबे तिलक थे। गृहस्थों ने राम-नामी चादर ओढ़ रखी थी जिन पर राम-नाम के साथ-साथ कुछ दोहे छपे हुए थे। उस तपोभूमि के शांत नीरव वातावरण ने मेरे मन को मुग्ध किया ही, इस श्रोता मंडली की सौम्य जनता ने भी मुझे कम आकर्षित नहीं किया। परंतु इन राम-नामी दुपट्टा और त्रिपुंड तिलकों के बाह्याचार ने मन में गहरे अप्रिय भाव पैदा किए। धर्म का यह दिखावा मुझे सदैव बुरा लगा है। अब तो और भी अधिक लगने लगा है।

हमारे पहुँचने के तुरंत बाद सभा की कार्यवाही प्रारंभ की गई। मंत्रीजी ने राजदूत के और मेरे स्वागत में कुछ मीठे शब्द कहे। अपने तपोवन का एक संक्षिप्त परिचय दिया और बताया कि प्राच्य संस्कृति-परिचय की यहां एक शाखा खुल गई है। इसके तुरंत बाद लल्लन प्रसाद व्यास ने हम दोनों अतिथियों का परिचय दिया और उस तपोभूमि और तपोभूमि के गुरु का भी परिचय देते हुए कहा कि यह कहना गलत है कि प्राच्य संस्कृति परिषद की यहां एक शाखा खुल गयी है। वस्तुतः यह भूल है। यहां तो प्राच्य संस्कृति परिषद की उत्पत्ति हुई है। मुझे उनकी यह व्याख्या बहुत पसंद आई। इसके बाद विदेशी राजदूत का बहुत संक्षिप्त भाषण हुआ और शायद उससे भी संक्षिप्त मेरा। मेरी मनोदशा उस समय कुछ ऐसी भावावेशमयी थी कि मैंने ऊपर-ऊपर से धर्म और संस्कृति की लंबी चौड़ी दुहाई देने वाले इस देश की आध्यात्मिक और चारित्रिक पतित अवस्था की व्याख्या की तो मैंने देखा कि मेरे मन की पीड़ा श्रोताओं के हृदय को चीरती हुई उनमें समा गई है। मेरे सामने बैठी हुई एक युवती भावातिरेक में सिसक-सिसक कर रोने लगी और आंखें तो न जाने कितनों की गीली हो गईं। मैंने देखा कि मेरे बाद जो भाई हमें धन्यवाद देने के लिए खड़े हुए उनकी आंखें भी गीली थीं और कंठ रुंधा हुआ था। बड़ी विचित्र बात थी। मैंने परोक्ष नहीं बल्कि प्रत्यक्ष रूप से इन सभी लोगों को फटकारा था जो विश्व भर में भारतीय धर्म और संस्कृति

के प्रचार की बातें तो करते हैं परंतु देश के चारित्रिक उत्थान के लिए कुछ नहीं करते। यह तो उस आश्रम के संन्यासियों को और वनाश्रयी आश्रम वासियों को मेरी ओर से बहुत बड़ी चुनौती थी और आशंका तो इस बात की थी कि मेरे भाषण के उत्तर में कोई तिलमिलाया हुआ चेहरा उठेगा और अपनी सफाई पेश करेगा। परंतु सद्धर्म का कुछ ऐसा प्रभाव रहा कि सर्वथा स्वस्थ प्रतिक्रिया ही हुई। अंत में जब उनके गुरुदेव ने अपने भाषण में विश्वभर के लिए अपना एक संदेश पढ़कर सुनाया, जो कि पहले से तैयार किया हुआ था, तो उस लिखित संदेश को पढ़ देने के बाद उन्हें मेरे भाषण के उत्तर में दो शब्द कहने ही पड़े। मैंने देखा कि देश की दुरवस्था से वे विरक्त महात्मा भी द्रवीभूत थे और मुझे इस बात का आश्वासन दे रहे थे कि उनका वह आश्रम जनता के आध्यात्मिक स्तर को ऊंचा उठाने के लिए भरसक प्रयत्न करेगा। इसके बाद सभा विसर्जित हुई और उन अध्यक्ष संन्यासीजी के साथ हम आश्रम की नीरव शांति का अनुभव करने निकले। सचमुच वहां का वातावरण एक आदर्श तपोभूमि का ही वातावरण था। महात्माजी ने अपने ध्यान करने की कुटिया भी हमें दिखाई और उसके बाद हम एक ऐसे घने तरुकुंज की छाया में ले जाये गये जहां हमारे बैठने का पहले से प्रबंध था। अस्तु।...

तुम्हारा अनुज,
सत्य नारायण गोयन्का

(बाबू भैया के साथ पत्राचार के अंश) *क्रमशः ...*

पूज्य गुरुजी के भारत आने के बाद के अनुभव

विश्व विपश्यनाचार्य पूज्य गुरुजी श्री सत्यनारायण गोयन्काजी के शुद्ध धर्म के संपर्क में आने से लेकर उनके प्रारंभिक जीवन की चर्चाओं के अनेक लेख छपे। अब उनके विपश्यना आरंभ करने के उपरांत जो अनुभव हुए या उन्होंने जो शिक्षा दी उन्हें प्रकाशित कर रहे हैं। उसी कड़ी में प्रस्तुत है– **आत्म-कथन भाग-2** की क्रमशः **उन्नीसवीं कड़ीः**–

भारत का कर्ज

गुरुदेव सयाजी ऊ बा खिन के मुँह से मैं बार-बार सुनता था कि मुझे भारतवर्ष का कर्ज चुकाना है। भारत ने हमें विपश्यना की अनमोल विद्या दी है। इस क्षेत्र में उसका हम पर बहुत बड़ा ऋण है। वहां तो विपश्यना शब्द ही गायब हो चुका है। इसलिए मुझे स्वयं वहां जाना है और लोगों को यह विद्या सिखानी है।

जब मैं उनसे पहली बार मिला तब गुरुदेव ने कहा था कि मैं तुम्हें भारत की बहुत उत्तम विद्या सिखाऊंगा, जिसका नाम विपश्यना है। मैंने घर आकर हिंदी और संस्कृत की डिक्शनरी देखी तो उनमें विपश्यना शब्द ही नहीं था। सचमुच कितना कंगाल हो गया था भारत। इसलिए यह कर्ज उन्हें स्वयं चुकाना था। वे कहते, "यह काम मैं स्वयं करूंगा, दूसरा कौन करेगा?" परंतु उन्हें बरमी सरकार ने पासपोर्ट नहीं दिया।

उन दिनों पासपोर्ट केवल दो ही शर्त पर दिया जाता था– एक तो जब कोई हमेशा के लिए देश छोड़ कर चला जाय। अथवा दूसरे देश में उसे कोई नौकरी मिल जाय। गुरुदेव को नौकरी तो करनी नहीं थी इसलिए उसका बहाना कर नहीं सकते थे। न ही वे म्यंमा सदा के लिए छोड़ना चाहते थे। इसलिए वे भारत आने से वंचित रह गये।

कुछ समय बाद मैंने सुना कि मेरी मां जो कि कुछ समय पहले भारत आकर परिवार के अन्य सदस्यों के साथ रहने लगी थी, बीमार पड़ गयी है। उसने सुना कि म्यंमा की सरकार भारत के लोगों को बहुत कष्ट दे रही है। इसलिए उसे अपनी संतान के प्रति चिंता हो गयी। मैं जानता था कि मां साधना करेगी तो वह ठीक हो जायगी। अत: भारत जाकर मैं उसे विपश्यना सिखाऊं। अगले दिन मैंने पासपोर्ट के लिए आवेदन किया। संयोग से उस समय मेरे एक मित्र ऊ तिं हां विदेश विभाग के मंत्री थे। उनके सहयोग से मेरा काम आसान हो गया। भारत जाने के लिए मुझे पासपोर्ट मिल गया। यह जान कर पूज्य गुरुदेव बहुत प्रसन्न हुए। मैं भारत आने लगा तो उन्होंने कहा, "भारत का जो कर्ज मुझे चुकाना था उसे अब तुम चुकाओगे।" अत: उन्होंने मुझे विपश्यना का विधिवत आचार्य नियुक्त करके भारत भेजा।

प्रसन्नचित्त से मैं भारत आया। मुझे तो मेरे माता-पिता को विपश्यना सिखानी थी। बाकी और भी कोई शिविर में बैठे तो बैठे।

भारत में मैं अपने परिवार के सदस्यों को छोड़ कर और किसी को जानता नहीं। मुश्किल से कुछ इने-गिने मित्रों से मेरा परिचय मात्र था। इस सर्वथा अपरिचित विशाल देश में मैं विपश्यना कैसे सिखा सकूंगा? मुझे अपने आप पर संदेह था कि मैं शिविर लगाऊं भी तो उसमें कौन आयगा? शिविर कहां लगेगा? उसकी व्यवस्था कौन करेगा? उसका खर्च कौन उठायगा? ये प्रश्न मुझे व्याकुल बना रहे थे। परंतु गुरुदेव ने आश्वासन दिया था कि शिविर तुम नहीं, मैं लगा रहा हूं। अत: जरा भी चिंता न करना।

भारत में पहला शिविर

सचमुच उनका कथन कितना सत्य सिद्ध हुआ। ये सारे प्रश्न लिए हुए मैं मुंबई पहुँचा ही था कि यहां बसे हुए मेरे म्यंमा के कुछ पुराने मित्र मिलने आये। उनसे चर्चा होने लगी तो उनमें से एक श्री दयानंद अडुकिया ने कहा कि आप शिविर लगाइए मैं सारा प्रबंध करवा दूंगा। इतने में कुछ साथी शिविर में भाग लेने के लिए भी तैयार हो गये। पंचायती वाडी धर्मशाला में शिविर की व्यवस्था हुई और ३ जुलाई १९६९ को पहला शिविर लगा, जिसमें मेरे माता-पिता, कुछ परिवार के सदस्य और कुछ परिचित मित्र, कुल मिला कर १३ लोग उसमें सम्मिलित हुए। उनके द्वारा बात फैलने लगी और दूसरा शिविर लगाने की बात होने लगी। अगला शिविर चेन्नई (मद्रास) में लगा और फिर तीसरा पुनः मुंबई में। इस प्रकार एक के बाद एक शिविरों की मांग होती गयी और शिविर पर शिविर लगते चले गये।

मेरे एक साहित्यकार मित्र श्री यशपाल जैन ने दिल्ली में शिविर लगाने का निमंत्रण दिया और वहां के बिड़ला मंदिर में एक शिविर लगवाया। ऐसे ही सारनाथ की बिड़ला धर्मशाला में भिक्षु धर्मरक्षितजी ने शिविर की व्यवस्था की, जिसमें प्रतापगढ़ (उत्तर प्रदेश) का जीतलाल अपने परिवार के साथ सम्मिलित हुआ। उसने अपने गांव माधोगंज, जिला प्रतापगढ़ में एक शिविर लगवाया। बाद में प्रतापगढ़ शहर में भी शिविर लगवाया। अच्छा प्रारंभ हुआ। अपरिचित लगने वाले लोग परिचित से लगने लगे। जो भी शिविर में बैठा वही विपश्यना का भक्त हो गया। यों शिविरों की मांग बढ़ती गयी और उत्तर भारत में घूम-घूम कर शिविर लगाने लगा। यात्रा का खर्च मेरे परिवार के सदस्यों ने स्वयं उठाया। मेरी और यादव की टिकटें खरीद देते और 200-400 रुपये मेरे साथ लगा देते, जिसमें से मैं जहां भोजन करता वहां 100 रुपये दान स्वरूप देता।

उत्तर भारत में अनेक शिविर लगे। धर्म की महत्ता और गुरुदेव सयाजी ऊ बा खिन का आशीर्वाद ही था कि कहीं कोई कठिनाई नहीं

हुई। यों शिविर पर शिविर लगते चले गये, शिविरों की मांग बढ़ती चली गयी।

विपश्यना शिविरों का लाभ मेरे परिवार के सभी सदस्यों ने उठाया, विशेष कर आनन्द मार्ग की साधना करने वाले अधिकांश सदस्यों ने खूब प्रगति की। सबसे बड़ा भाई श्री बालकृष्ण साधना करते हुए विपश्यना का आचार्य बन गया और उसके हाथों दक्षिण भारत के अनेक लोगों का कल्याण हुआ। वह दक्षिण भारत के विपश्यना केंद्रों की जिम्मेदारियां भी संभालता रहा। परंतु सबसे छोटा भाई श्यामसुंदर अभी तक विपश्यना के लाभ से वंचित है। उसे आनन्द मार्ग से बहुत गहरा लगाव जो है।

कलकत्ते में जो पहला शिविर लगा उसकी एक दुर्घटना। उसमें बैठा एक युवक मानसिक रूप से विक्षिप्त था। वह इस शिविर से स्वस्थ हुआ। उसकी मां बहुत प्रसन्न हुई और अंतिम दिन उसे लेकर मुझे नमस्कार करने आयी। उसने कहा कि उसके बेटे को आशीर्वाद दूं ताकि वह सदा के लिए ठीक हो जाय और धर्म में आगे बढ़े। मैंने कह दिया इसे शीघ्र निर्वाण मिले। परंतु भारत में यह शब्द मृत्यु का पर्याय बन गया था। मैंने उसे आशीर्वाद देने के बजाय निर्वाण की बात कह दी। वह बहुत बिगड़ी। मैंने समझाने का बहुत प्रयत्न किया कि इस साधना से जीते-जी निर्वाण की अनुभूति होती है। कोई भी निर्वाणिक अवस्था प्राप्त कर सकता है और वापस दैनिक जीवन के सारे काम कर सकता है। लेकिन वह समझने के लिए तैयार नहीं हुई।

एक और घटना। एक शिविर में मेरे चचेरे भाई श्री चौथमल का एक मित्र सम्मिलित हुआ, जो कि यू.पी. का एक प्रसिद्ध वैद्य था। उसकी साधना अच्छी चल रही थी। तीसरे दिन जब विपश्यना दी गयी तो सारे शरीर में संवेदना की अनुभूति हुई। परंतु जब मैंने पूछा कि तुम्हें पेट में कोई वेदना महसूस हुई? तो उसे लगा कि मैं फालतू बात करता हूं। यहां वेदना केवल पीड़ा को कहने लगे थे। जहां पीड़ा न हो उसे वेदना कैसे कहेंगे। वह उसी दिन शिविर छोड़ कर चला गया। तब से मैं वेदना के स्थान पर संवेदना शब्द का उपयोग करने लगा। इस प्रकार भारत की प्रयोगात्मक भाषा का ज्ञान हुआ। भाषा को लेकर जो कठिनाइयां आयीं, वे धीरे-धीरे अनुभव में आते-आते ही दूर हुईं। इन घटनाओं के बाद भी शिविर अच्छे गये और सब लोग प्रसन्नतापूर्वक घर लौटे।

ऐसे ही उत्तर भारत के हिंदी शिविरों में, विशेष कर बोधगया के शिविरों में हिप्पी टाइप के लोग बड़ी संख्या में सम्मिलित होने लगे। उन दिनों मेरा अंग्रेजी का ज्ञान बहुत मामूली था। अपने व्यापार-धंधे में काम आ सके, बस उतनी ही अंग्रेजी आती थी। अत: मैं उन्हें अलग से बुला कर थोड़े से शब्दों में काम की बात समझा देता और अभ्यास करते हुए वे आगे बढ़ते रहते। जब कभी अंग्रेजी भाषा का कोई शब्द नहीं बोल पाता तो उसे साधकों से सीख-समझ लेता। ऐसे में एक बहुत बुरा प्रसंग सामने आया। मैत्री के दिन मैत्री-करुणा का पाठ पढ़ाना था। मैंने कह दिया कि today is the day to make love. अंग्रेजी ठीक से नहीं आने से नहीं समझा कि इसका अर्थ क्या होता है? परिणाम यह हुआ कि तीन हिप्पी कपल पेड़ के नीचे कामक्रीड़ा में लिप्त हो गये। जब मैंने उन्हें डांटा तो कहने लगे, आपने ही तो कहा, "टुडे इज द लव मेकिंग डे।" हम इसका क्या जवाब देते?

उन्हीं दिनों दिल्ली में 'साधना' विषय पर कोई एक विश्वस्तरीय सम्मेलन था। उसमें सम्मिलित मेरे एक साधक ने कह दिया कि यदि साधना की सही विद्या सीखनी हो तो श्री गोयन्काजी के पास जाओ। वे बुद्ध की सिखायी हुई वैज्ञानिक विद्या 'विपश्यना' साधना सिखाते हैं। यह सुन कर संस्था का अध्यक्ष अमेरिका का बाबा रामदास बोधगया के शिविर में चला आया। शिविर में सम्मिलित होकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कई शिविर किए और बहुत प्रसन्न होकर स्वदेश लौटा। उसके बाद उसके अनेक शिष्य शिविरों में आने लगे।

अंग्रेजी भाषा में पहला शिविर

अब उन सबका आग्रह होने लगा कि उनके लिए मैं डलहौजी में एक शिविर अंग्रेजी में लगाऊं। परंतु मेरी अंग्रेजी इतनी अच्छी नहीं थी कि मैं धाराप्रवाह प्रवचन दे सकूं। उनके लिए अलग से शिविर लगाना असंभव-सा लगा। उनमें से कुछ ने गुरुदेव को पत्र लिखा कि यह विद्या म्यंमा से भारत आयी और सब के लिए खोल दी गयी। परंतु यह व्यक्ति भाषा का बहाना बना कर हमें धर्म से वंचित करना चाहता है। मेरे पास गुरुदेव का फोन आया और डांट लगाते हुए उन्होंने कहा कि शिविर तुम थोड़े लगा रहे हो। शिविर तो मैं लगा रहा हूं। तुम इनकी बात मान कर डलहौजी में शिविर अवश्य लगाओ। धर्म मदद करेगा और सब ठीक होगा। तुम चिंता मत करो।

गुरुदेव की आज्ञा मान कर मैंने शिविर लगाया। डलहौजी की एक होटल में पहले भी हिंदी में शिविर लग चुका था। परंतु अंग्रेजी में यह पहला शिविर लगा। पहले दिन मुश्किल से १५ मिनट बोल पाया। दूसरे दिन आध घंटे तक बोला और तीसरे दिन से पूरे घंटे भर धाराप्रवाह प्रवचन देने लगा। किसी शब्द पर अटकता तो साधक मदद कर देते। शिविर बहुत अच्छा गया। हिंदी की भांति अंग्रेजी में भी धाराप्रवाह बोलने पर मुझे आश्चर्य हुआ और साधक भी चकित हुए। सचमुच शिविर मेरा नहीं था। पूज्य गुरुदेव का था, धर्म का था। मैं तो बेकार झिझक रहा था। सारी झिझक निकल गयी। सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। यह शिविर हम सब के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ।

(आत्म कथन भाग 2 से साभार) *क्रमशः ...*

अतिरिक्त उत्तरदायित्व

1-2. श्री ए. सुब्रमनियन एवं श्रीमती एस. जानकी, धम्म सेतु के केंद्रीय आचार्य

वरिष्ठ सहायक आचार्य

1. डॉ. भीष्म प्रसाद सुबेदी, नेपाल ; धम्मसुरियो वि. केंद्र के केंद्रीय आचार्य
2. श्री ओंकार वाकोडे, धम्म साकेत (धम्म गृह), उल्हासनगर (जि. ठाणे) के केंद्रीय आचार्य
3. Ms. Panorea Pervival, South Africa.

नव नियुक्तियां

सहायक आचार्य

1. श्री उत्तम चौधरी, मुजफ्फरपुर
2. Mrs. Eshrat Alinia, Iran
3. Ms. Farahnaz Khazanehdary, Iran
4. Mr. Mohsen Bazroodi, Iran
5. Mr. Stasick Seyoum Kebede, Iran
6. Mr. Youssef Terzikhan, Morocco
7. Mr. Silvano Pedroni, Morocco

भावी शिविर कार्यक्रम एवं आवेदन

सभी भावी शिविरों की जानकारी नेट पर उपलब्ध है। कोविद-19 के नये नियमानुसार सभी प्रकार की बुकिंग केवल ऑनलाइन हो रही है। फार्म-अप्लीकेशन अभी स्वीकार्य नहीं हैं। अतः आप लोगों से निवेदन है कि निम्न लिंक पर चेक करें और अपने उपयुक्त शिविर के लिए अथवा सेवा के लिए सीधे ऑनलाइन ही आवेदन करें:

https://www.dhamma.org/en/schedules/schgiri

कृपया अन्य केंद्रों के कार्यक्रमानुसार भी इसी प्रकार आवेदन करें।

अन्य केंद्रों के कार्यक्रमों के विवरण कृपया निम्न लिंक पर खोजें:-

https://www.dhamma.org/en-US/locations/directory#IN

ग्लोबल विपश्यना पगोडा में वर्ष 2021 के महाशिविर एवं प्रतिदिन एक-दिवसीय शिविर

रविवारः 10 जनवरी, 2021 को पू. माताजी की पुण्यतिथि एवं सयाजी ऊ बा खिन की पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में; **23 मई,** बुद्ध पूर्णिमा के उपलक्ष्य में; **25 जुलाई,** आषाढ़ी पूर्णिमा; तथा **26 सितंबर,** शरद पूर्णिमा एवं श्री गोयनकाजी की पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में; पगोडा में महाशिविरों का आयोजन होगा, जिनमें शामिल होने के लिए कृपया अपनी बुकिंग अवश्य करायें और **समग्गानं तपो सुखो**– सामूहिक तप-सुख का लाभ उठाएं। **समयः** प्रातः11 बजे से अपराह्न 4 बजे तक। 3 से 4 बजे के प्रवचन में बिना साधना किये लोग भी बैठ सकते हैं। (*फिलहाल पगोडा में हर रोज एक-दिवसीय शिविर होता है और वही लोग सम्मिलित होते हैं जो वहां परिसर में उपस्थित हैं।*) बुकिंग हेतु कृपया निम्न फोन नंबरों पर फोन करें अथवा निम्न लिंक पर सीधे बुक करें। संपर्क: 022-28451170, 022-62427544- Extn. no. 9, 82918 94644. (फोन बुकिंग-प्रतिदिन 11 से 5 बजे तक) Online Regn: http://oneday.globalpagoda.org/register

This is to Certify that

Mr. Satyanarayan Goenka

OF No. 77, SHWEBONTHA STREET, RANGOON

has been practising Buddhist Meditation under my guidance from September 1955 to date and that he has made a good study of the fundamentals of the theory of Buddhism. He has also [illegible] in the teaching of Buddha Dhamma, in theory and practice, to nearly two hundred persons of Indian Nationality at Rangoon, Mandalay and Maymyo. I consider him to be well established to teach Buddhist Meditation abroad and I accordingly authorise him to teach Buddhist Meditation on my behalf in accordance with the principles followed by me at the International Meditation Centre at Rangoon, Burma.

Date 20th June 1969.

Ba Khin
(THRAY SITHU U BA KHIN)
President,
International Meditation Centre,
Rangoon, Burma.

..."सयाजी ने मुझे विपश्यना का विधिवत आचार्य नियुक्त करके भारत भेजा।"

दोहे धर्म के

जात-पांत नहिं धरम है, धरम न बने दिवार।
धरम सिखाये एकता, मनुज-मनुज में प्यार॥

जाति-वर्ण के नाम पर, फैला अत्याचार।
सदाचार गर्हित हुआ, पूजित मिथ्याचार॥

जब-जब यश चर्चा सुने, तब-तब होय विनीत।
परख स्वयं को अहं तज, रख मन शांत पुनीत॥

चर्चा ही चर्चा करे, धारण करे न कोय।
धर्म बिचारा क्या करे? धारे ही सुख होय॥

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा0) लिमिटेड
8, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई- 400 018
फोन: 2493 8893, फैक्स: 2493 6166
Email: arun@chemito.net
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

जात वरण रो, गोत रो, जठै भेद ना होय।
जो सैं को मंगळ करै, धरम सांचलो सोय॥

रंग गाय रो भिन्न है, दूध भिन्न ना होय।
संप्रदाय होवै जुदा, धरम जुदा ना होय॥

कथणी करणी बिच इसी, देखी नहीं दुभांत।
कवै जात है करम स्यूं, मानै जन्मां जात॥

ब्रह्म ब्रह्म मुख स्यूं कयां, ब्रह्म बणै ना कोय।
साबण साबण बोलतां, चीर न निरमळ होय॥

मोरया ट्रेडिंग कंपनी
सर्वो स्टॉकिस्ट-इंडियन ऑईल, 74, सुरेशदादा जैन शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, एन.एच.6, अजिंठा चौक, जलगांव - 425 003, फोन. नं. 0257-2210372, 2212877
मोबा.09423187301, Email: morolium_jal@yahoo.co.in
की मंगल कामनाओं सहित

"विपश्यना विशोधन विन्यास" के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी- 422 403, दूरभाष :(02553) 244086, 244076.
मुद्रण स्थान : अपोलो प्रिंटिंग प्रेस, 259, सीकाफ लिमिटेड, 69 एम. आय. डी. सी, सातपुर, नाशिक-422 007. बुद्धवर्ष 2564, आश्विन पूर्णिमा, 31 अक्टूबर, 2020

वार्षिक शुल्क रु. 30/-, US $ 10, आजीवन शुल्क रु. 500/-, US $ 100. "विपश्यना" रजि. नं. 19156/71. Postal Regi. No. NSK/RNP-235/2018-2020

Posting day- **Purnima of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422 403,** Dist. Nashik (M.S.) (फुटकर बिक्री नहीं होती)

DATE OF PRINTING: (on-line-edition), DATE OF PUBLICATION: 31 OCTOBER, 2020

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - 422 403
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (02553) 244076, 244086,
244144, 244440.
Email: vri_admin@vridhamma.org;
course booking: info@giri.dhamma.org
Website: www.vridhamma.org